पूरा बेंच

लेटर्स पेटेंट आवेदन

राम काला,-अपीलार्थी

बनाम

सहायक निदेशक, जोत का समेकन , पंजाब, रोहतक और अन्य का एकीकरण-उत्तरदाता

लेटर्स पेटेंट अपील नं. 1974 का 209

15 दिसंबर, 1976

परिसीमा अधिनियम (1963 का 36)-अनुसूची का अनुच्छेद 137-भारत का संविधान 1950-अनुच्छेद 226-अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में पार्टियों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन-अनुच्छेद 137- क्या लागू है ।

अभिनिर्धारित किया गया कि भारत के संविधान 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय किसी ऐसे वाद का विचारण नहीं करता है जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है। यह स्थापित कानून है कि जब किसी न्यायालय को संसद के किसी अधिनियम के तहत किसी विशेष अधिकार क्षेत्र के साथ निवेश किया जाता है, तो उसे उस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए आवश्यक सभी सहायक कदम उठाने का अधिकार भी दिया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय में प्रस्तुत याचिका को अनिवार्य रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत एक आवेदन के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह एक पूरी तरह से अलग मामला है कि इस तरह के आवेदन पर विचार करते समय और निर्णय लेते समय, उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के सिद्धांतों पर ध्यान दे सकता है जो समानता, न्याय और सद्भावना पर आधारित हैं, लेकिन ऐसा करने में उच्च न्यायालय शायद ही कभी उक्त संहिता के दंडात्मक प्रावधानों का सहारा लेता है। यह देखना होगा कि क्या इस तरह के आवेदन के अनुदान से न्याय के उद्देश्यों को बढ़ावा मिलेगा या नहीं। इसलिए, सीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची का अनुच्छेद 137, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय में दायर एक आवेदन को नियंत्रित नहीं कर सकता है। इसलिए अधिनियम का अनुच्छेद 137 संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका में पक्षकारों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने के आवेदन पर लागू नहीं होता है।

(पैरा 19 एवं 21)

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री आर. एस. नरूला और माननीय न्यायमूर्ति श्री एम. आर. शर्मा की खंडपीठ द्वारा 13 अगस्त, 1974 को मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को भेजा गया मामला। माननीय न्यायमूर्ति ओ. चिन्नाप्पा रेड्डी, माननीय श्री न्यायमूर्ति एम. आर. शर्मा और माननीय न्यायमूर्ति सुरिंदर सिंह की पूर्ण पीठ ने अंततः 15 दिसंबर, 1976 को मामले का फैसला किया।

माननीय न्यायमूर्ति श्री भूपिंदर सिंह ढिल्लों के फैसले के खिलाफ लेटर्स पेटेंट के खंड X के तहत लेटर्स पेटेंट अपील, सिविल रिट नं. 28 मार्च, 1974 को 1965 का 3036.

आनंद सरूप, वरिष्ठ अधिवक्ता, आर. एस. मित्तल, अधिवक्ता और के. जी. चौधरी, अधिवक्ता, अपीलार्थी की ओर से।

पूरन चंद, अधिवक्ता, प्रत्यर्थी नं। 2 और 3. प्रत्यर्थी की ओर से उनके साथ अधिवक्ता वी. के. वशिष्ठ।

पूरन चंद, अधिवक्ता, प्रतिवादी नंबर 2 और 3 के लिए। उनके साथ वी. के. वशिष्ठ, अधिवक्ता, प्रतिवादी के लिए।

संदर्भित आदेश

आर.एस. नरूला, सी.जे.

(1) क्या परिसीमा अधिनियम (1963 का 36) की अनुसूची का अनुच्छेद 137 संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी याचिका में पक्षकारों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने के आवेदन पर लागू होता है या नहीं, विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी की रिट याचिका के विनिश्चय के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट के खंड 10 के अधीन इस अपील के पूर्व विनिश्चय किया जाना है और गुणागुण के आधार पर विचार किया जा सकता है। यह प्रश्न निम्नलिखित परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ हैः -

(2) ईस्ट पंजाब होल्डिंग्स (समेकन और विखंडन की रोकथाम) अधिनियम (1948 का 50) की धारा 21 की उपधारा (4) के अधीन दिनांक 20 मई, 1959 के आदेश द्वारा (रिट याचिका के अनुलग्नक 'क') (जिसे इसके पश्चात् अधिनियम कहा जाता है) सहायक निदेशक, होल्डिंग्स, पटियाला के समेकन ने दीपन (प्रत्यर्थी नं. 4 रिट याचिका में) और ग्राम समचना, तहसील और जिला रोहतक में पुनर्विभाजन कार्यवाही से संबंधित अन्य, और कुछ ऐसे परिवर्तन किए जिनसे उपरोक्त दीपन, बाबा अमर दास (प्रत्यर्थी सं. 7 रिट याचिका में) और राम कला अपीलार्थी। अधिनियम की धारा 42 के तहत अपीलार्थी की याचिका को होल्डिंग्स के समेकन निदेशक के आदेश, दिनांक 23 अगस्त, 1961 (अनुलग्नक 'बी') द्वारा अनुमति दी गई थी। हालाँकि, वह आदेश क्रमशः माया चंद और दया चंद प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की अनुपस्थिति में पारित किया गया था। उक्त प्रत्यर्थियों ने 15 अक्टूबर, 1962 के इस न्यायालय के आदेश द्वारा 1962 के सिविल रिट 184 में इस आधार पर उस आदेश को दरकिनार करने में सफलता प्राप्त की कि इसे निदेशक द्वारा माया चंद और दया चंद को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया था। अतिरिक्त निदेशक, होल्डिंग्स के समेकन, रोहतक ने माया चंद और दया चंद को सुनने के बाद 9 जनवरी, 1963 को रिमांड के बाद की कार्यवाही में इसी प्रभाव का एक आदेश (अनुलग्नक 'सी') पारित किया। जिस आधार पर आदेश अनुलग्नक 'क' को धारा 42 के तहत दोनों अवसरों पर संशोधित किया गया था और कुछ हद तक उलट दिया गया था, वह यह था कि योजना के विपरीत राम कला अपीलार्थी को कोई चाही भूमि आवंटित नहीं की गई थी। अपीलार्थी दोनों अवसरों पर अतिरिक्त निदेशक द्वारा पारित आदेशों से संतुष्ट था। अतिरिक्त निदेशक के दूसरे आदेश से भी संतुष्ट न होने पर माया चंद और दया चंद ने 1963 के सिविल रिट 514 में फिर से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। दिनांक 3 नवंबर, 1965 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय (ए. एन. ग्रोवर, जे. जैसा कि वे तब थे) ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया, और इस आधार पर अतिरिक्त निदेशक के आदेश को रद्द कर दिया कि रूप चंद बनाम पंजाब राज्य और अन्य 1963 पी.एल.आर. 576. मामले में उच्चतम न्यायालय के अपने लॉर्डशिप के बाध्यकारी फैसले के मद्देनजर राज्य सरकार की शक्तियों का प्रयोग करने वाले सहायक निदेशक के आदेश के खिलाफ अधिनियम की धारा 42 के तहत पुनरीक्षण में

किसी भी याचिका पर सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र उनके पास नहीं था। परिणाम यह हुआ कि सहायक निदेशक के दिनांक 20 मई, 1959 के आदेश पर रोक लगा दी गई और अपीलार्थी, जो इससे व्यथित था, के पास रिट कार्यवाही में उसे आरोपित करने के अलावा कोई उपाय उपलब्ध नहीं बचा था। इसलिए, उन्होंने 1965 के इस न्यायालय सिविल रिट 3036 में याचिका दायर की, जिसके खारिज होने के खिलाफ वर्तमान अपील दायर की गई है। रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान बाबा अमर दास और दीपन (उत्तरदाता नं. 7 और 4, क्रमशः) की मृत्यु क्रमशः 5 सितंबर, 1968 और 1 जनवरी, 1970 को हुई।

(3) अपीलार्थी का आवेदन, दिनांक 2 मई, 1973 (सिविल विविध सं. 1973 का 2908) मृतक प्रत्यर्थियों के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए 17 मई, 1973 को फाइल किया गया था और अंततः न्यायमूर्ति आर. एन. मित्तल, न्यायमूर्ति, दिनांक 23 नवंबर, 1973 के आदेश द्वारा संक्षिप्त आधार पर खारिज कर दिया गया था कि यह इस न्यायालय की खंड पीठ (डी. के. महाजन और बी. आर. तुली, जे. जे.) द्वारा डूला सिंह बनाम भारत संघ और अन्य,1971 P.L.R. 432=(3) I.L.R. (1973) Pb. & Hary. 491. में निर्धारित विधि के अनुसार समय द्वारा वर्जित था, (3) के अनुरूप जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परिसीमा अधिनियम की अनुसूची का अवशिष्ट अनुच्छेद 137 ऐसे आवेदन पर लागू होता है; क्योंकि वर्तमान मामले में आवेदन दीपन के साथ-साथ बाबा दास अमर दास की मृत्यु से तीन वर्ष से अधिक की समाप्ति के बाद दायर किया गया था और परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन परिसीमा अवधि बढ़ाने के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था। जब 28 मार्च, 1974 को न्यायमूर्ति ढिल्लों के समक्ष अंतिम निपटारे के लिए रिट याचिका पेश की गई, तो विद्वान न्यायाधीश स्वाभाविक रूप से असहाय महसूस कर रहे थे क्योंकि वे दीपन और बाबा अमर दास मृतक प्रतिवादियों के अधिकारों को प्रभावित किए बिना अपीलार्थी को कोई राहत नहीं दे सकते थे, जो याचिका के लिए आवश्यक पक्ष थे, लेकिन अदालत के समक्ष उनके उत्तराधिकारियों द्वारा उनका प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था।

(4) अपीलार्थी की रिट याचिका को खारिज करने वाले आदेश के विरुद्ध इस अपील में (जिसके निर्णय के साथ मित्तल, न्यायमूर्ति, दिनांक 23 नवंबर, 1973 का पूर्व आदेश मिला दिया गया है) अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आनंद स्वरूप द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दुला सिंह के मामले (उपर्युक्त) में खंड पीठ के उपरोक्त निर्णय के अनुसार रिट कार्यवाही किसी आवश्यक पक्ष की मृत्यु से कम नहीं होती है, और उस आधार पर खारिज नहीं की जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विद्वान वकील इस संबंध में सही हैं, लेकिन यदि आवश्यक पक्षों को इसमें शामिल नहीं किया गया है तो एक रिट याचिका को खारिज कर दिया जाना चाहिए। यह सवाल से परे है कि दीपन और बाबा अमर दास के कानूनी प्रतिनिधि रिट याचिका के लिए आवश्यक पक्षकार थे क्योंकि अपीलार्थी को कोई राहत देने से उनके अधिकार प्रभावित होने के लिए बाध्य थे। तथापि, दुला सिंह के मामले (उपर्युक्त) में खण्डपीठ के निर्णय में इस आशय की टिप्पणियां हैं कि रिट याचिका में मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने का आवेदन परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होता है। डूला सिंह के मामले में जो आवेदन किया गया था वह तीन साल के भीतर था, और इसलिए, यह सवाल कि तीन साल की अवधि समाप्त होने के बाद दायर किए गए इस तरह के आवेदन का क्या होगा, विद्वान न्यायाधीशों के सामने नहीं उठा। खंड पीठ ने अनुच्छेद 137 को लागू करने के संबंध में टिप्पणियां उस मामले में प्रभावित पक्ष के इस तर्क को पलटते हुए की थी कि परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 120 लागू होता है और मृतक पक्ष की मृत्यु के 90 दिनों से अधिक की समाप्ति के बाद उस मामले में दिया गया आवेदन समय द्वारा वर्जित था। इसलिए, उस मामले के पक्षों को यह आंदोलन करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी कि इस तरह के आवेदन की सीमा तीन साल से भी अधिक हो सकती है।

(5) श्री आनंद स्वरूप ने जोवाला सिंह प्रेरणा सिंह और अन्य बनाम मलकान नासिरपुर और अन्य मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश (टेक चंद, न्यायमूर्ति) के निर्णय पर भरोसा किया है, A.I.R. 1958 Pb. 171. जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के अधीन कार्यवाही के उपशमन के सिद्धांत को उस आदेश के नियम 11 द्वारा अपील के मामले में विस्तारित किया गया है, लेकिन संशोधनों के लिए इसकी प्रयोज्यता का कोई उल्लेख नहीं होने के कारण, उक्ति, समावेशी विशिष्ट परिवर्तन लागू होना चाहिए, और मुकदमों और अपीलों के लिए स्पष्ट रूप से उपशमन के नियम के आवेदन को प्रतिबंधित करके, विधायिका का इरादा संशोधन की कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले मामलों को इसके दायरे से बाहर करना था। वकील प्रस्तुत करता है कि वह जोवाला सिंह प्रेम सिंह के मामले (ऊपर) में न्यायमूर्ति टेक चंद द्वारा निर्धारित सिद्धांत का विस्तार कार्यवाहियों को रिट करने के लिए करना चाहता है। हालाँकि, उनके लिए ऐसा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि दुला सिंह की सहजता (उपर्युक्त) में बाद की खंडपीठ ने भी स्पष्ट रूप से, और हमारी राय में सही ढंग से, यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी वाद के लंबित रहने के दौरान उपशमन के मामले को नियंत्रित करने वाले आदेश 22 के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होते हैं। अपीलार्थी के रास्ते में कठिनाई इस तरह का आवेदन करने के लिए सीमा की है। इस समय मैं यह सोचने के लिए इच्छुक हूं कि इस तथ्य के बावजूद कि रिट याचिका दायर करने के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं है और आवश्यक पक्षों की कमी के कारण याचिका खारिज होने के बाद भी, अपीलार्थी को अदालत की संतुष्टि पर याचिका दायर करने में देरी की व्याख्या करने के अधीन सभी आवश्यक पक्षों को शामिल करके एक नई रिट याचिका दायर करने का अधिकार है, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संसद या किसी भी राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाया गया कोई भी साधारण कानून संविधान के प्रावधानों को ओवरराइड या प्रभावित नहीं कर सकता है, और एक रिट याचिका के माध्यम से उपाय संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदान किया गया है, जब तक कि संविधान के अनुच्छेद 226 में कुछ प्रभावी नहीं किया जाता है। यह अच्छी तरह से तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि यह अभिनिर्धारित करते हुए कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी याचिका के लिए कोई सीमा की अवधि नहीं है, उच्चतम न्यायालय के लॉर्डशिप्स ने मध्य प्रदेश राज्य में और दूसरे बनाम भाईलाल भाई,A.I.R. 1964 S.C. 1006. में यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी वाद में दावा की गई राहत पाने के लिए सामान्य अवधि की समाप्ति के पश्चात् दायर याचिका पर साधारणतया विचार नहीं किया जाना चाहिए, वही सिद्धांत रिट याचिका में मृत पक्षों को उनके उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिस्थापित करने के आवेदन पर लागू किया जाना चाहिए। यहां तक कि अगर उस सिद्धांत को लागू किया जाता है, तो एक मुकदमे में इसी तरह के आवेदन के लिए निर्धारित सीमा की सामान्य अवधि की समाप्ति रिट कार्यवाही में उसी राहत के लिए एक आवेदन के मनोरंजन के लिए एक पूर्ण बाधा नहीं होगी, और ऐसे मामलों में देरी का सवाल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर तय किया जाना होगा जैसा कि सीमा अधिनियम की किसी भी अनिवार्य आवश्यकता से विचलित हुए बिना एक रिट याचिका के मामले में किया जाता है। हालाँकि, हम महसूस करते हैं कि अगर अंततः हमें उस दृष्टिकोण को लेने के लिए राजी किया जाता है जो मैं इस समय लेने के लिए इच्छुक हूं, तो हमारा निर्णय दुला सिंह के मामले (ऊपर) में डिवीजन बेंच की टिप्पणियों के विपरीत जाएगा।

(6) मैं, इसलिए, विचार करता हूं कि इन परिस्थितियों में हमें इस मामले को दो से अधिक न्यायाधीशों की पीठ को विचार करने और यह निर्णय करने के लिए निर्दिष्ट करना चाहिए कि क्या परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 137 के उपबंध मृत पक्षों के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए आवेदनों पर या रिट याचिका में नए पक्षों को जोड़ने के लिए आवेदनों पर लागू होते हैं। चूँकि उस प्रश्न का उत्तर किसी भी तरह से इस अपील में निर्णय लेने के लिए और कुछ नहीं छोड़ेगा, इसलिए अपील का निर्णय उपरोक्त प्रश्न का उत्तर देने के बाद पूर्ण पीठ द्वारा ही किया जा सकता है। वर्तमान कार्यवाही में पक्षों की लागत पूर्ण पीठ द्वारा अपील की सुनवाई के परिणाम का पालन करेगी।

एम. आर. शर्मा, न्यायमूर्ति- मैं सहमत हूं।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया:-

एम. आर. शर्मा, न्यायमूर्ति-

(7) मामले के तथ्य मेरे लॉर्डशिप, मुख्य न्यायाधीश द्वारा तैयार किए गए संदर्भ के विस्तृत क्रम में दिए गए हैं और इसे फिर से दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

(8) मामले का निर्णय निम्नलिखित प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता हैः -

क्या परिसीमा अधिनियम (1963 का 36) की अनुसूची का अनुच्छेद 137 संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी याचिका में पक्षकारों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने के आवेदन पर लागू होता है या नहीं?

(9) आदेश XXII, नियम 4, सिविल प्रक्रिया संहिता, यह निर्धारित करता है कि जहां दो या दो से अधिक प्रतिवादियों में से एक की मृत्यु हो जाती है और मुकदमा करने का अधिकार अकेले जीवित प्रतिवादी या प्रतिवादियों के खिलाफ जीवित नहीं रहता है, या एकमात्र प्रतिवादी या एकमात्र जीवित प्रतिवादी की मृत्यु हो जाती है और मुकदमा करने का अधिकार जीवित रहता है, अदालत, उस ओर से दिए गए आवेदन पर मृतक प्रतिवादी के कानूनी प्रतिनिधि को एक पक्ष बनाने का कारण बनेगी और मुकदमे के साथ आगे बढ़ेगी। ये प्रावधान सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 11 के आधार पर अपीलों पर स्पष्ट रूप से लागू किए गए हैं। हालांकि, सिविल प्रक्रिया संहिता में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जो उक्त संहिता के आदेश XXII, नियम 4 के प्रावधानों को पुनरीक्षण याचिकाओं पर लागू करता है। इसके विपरीत, इस न्यायालय ने कई निर्णयों में कहा है कि संहिता का आदेश XXII पुनरीक्षण याचिकाओं पर लागू नहीं होता है। इस संबंध में जोवाला सिंह प्रेम सिंह और अन्य बनाम मलकान नासिरपुर और अन्य, (4) (ऊपर) राम सरन दास तारा चंद बनाम राम रिचपाल एल. मन्नू लाई और अन्य, A.I.R. 1963 Pb. 206 और श्रीमती धन देवी और एक अन्य बनाम बख्शी राम और एक अन्य, A.I.R. 1969 Pb. & Hary. 270 ।

(10) तथापि, यह तर्क दिया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका में, पक्षकारों के नागरिक अधिकार और सिविल प्रक्रिया संहिता में विहित प्रक्रिया शामिल हैं, जहां तक इसे सिविल कार्यवाहियों की प्रकृति में भाग लेने वाली कार्यवाहियों पर लागू किया जा सकता है और संहिता की धारा 141 और आदेश XXII सहित संहिता के अन्य उपबंधों के आधार पर ऐसी कार्यवाहियों पर लागू होता है।

(11) संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय किसी "वाद" का विचारण नहीं करता है जैसा कि सामान्य रूप से रेखांकित किया जाता है। सिविल प्रक्रिया संहिता में "सूट" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। हालांकि, हंसराज गुप्ता और अन्य बनाम देहरा दुन मसूरी इलेक्ट्रिक ट्रामवे कंपनी लिमिटेड ,A.I.R. 1933 Privy Council 63. में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "वाद" शब्द का अर्थ आम तौर पर होता है, और कुछ संदर्भों के अलावा इसका अर्थ "वाद की प्रस्तुति द्वारा स्थापित एक दीवानी कार्यवाही" होना चाहिए। इसी तरह का दृष्टिकोण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नवली उस्मानाली खान बनाम सागर माई, A.I.R. .1965 S,C. 1798. में लिया गया था। न्यायालय ने कहा -

"अब, भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 14 के तहत एक निर्णय और डिक्री को पारित करने के लिए भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 17 के साथ पढ़ा जाता है, एक वाद की प्रकृति में एक वाद या याचिका के साथ शुरू नहीं होता है, और इसे एक वाद के रूप में नहीं माना जा सकता है और जिन पक्षों को धारा 14 (2) के तहत पुरस्कार दाखिल करने की सूचना दी गई है, उन्हें किसी भी अदालत में मुकदमा नहीं माना जा सकता है। "

(12) संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल मामलों से संबंधित कार्यवाहियां निस्संदेह सिविल कार्यवाहियां हैं, लेकिन केवल इसी आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता ऐसी कार्यवाहियों को नियंत्रित करती है। यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायशास्त्र का प्रयोग करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता में प्रतिपादित सिद्धांतों पर ध्यान आकर्षित कर सकता है, क्योंकि इसमें निहित सिद्धांत मोटे तौर पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हैं। फिर भी, यह मामले की परिस्थितियों में त्वरित और प्रभावी न्याय प्रदान करने के लिए अपनी प्रक्रिया तैयार कर सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 में यह कहा गया है कि वादों के संबंध में उस संहिता में दिए गए प्रावधान का किसी भी सिविल क्षेत्राधिकार न्यायालय की सभी कार्यवाहियों में जहां तक इसे लागू किया जा सकता है, पालन किया जाएगा, लेकिन इस प्रावधान को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए इस न्यायालय के रास्ते में प्रक्रियात्मक बाधाओं को डालने के लिए कार्रवाई में नहीं दबाया जा सकता है, क्योंकि उस पाठ्यक्रम को अपनाना व्यावहारिक रूप से इस न्यायशास्त्र का गला घोंट देगा। बाबूभाई मुलजिभाई, पटेल बनाम नंदलाल खादिदास बारोट और अन्य ए.आई. आर 1974 एस.सी. 2105 के मामले में, न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 में "जहां तक इसे लागू किया जा सकता है" शब्दों पर विशेष ध्यान दिया और अभिनिर्धारित किया -

"जहां तक इसे लागू किया जा सकता है" शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि संहिता के विभिन्न प्रावधानों को वाद के अलावा अन्य कार्यवाहियों पर लागू करते समय न्यायालय को उन कार्यवाहियों की प्रकृति और मांगी गई राहत को ध्यान में रखना चाहिए। अनुच्छेद 226 का उद्देश्य पीड़ित पक्षों को त्वरित और सस्ता उपचार प्रदान करना है। परिणामस्वरूप उच्च न्यायालयों में किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को जारी करने की शक्ति निहित की गई है, जिसमें अनुमोदन मामलों में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर कोई भी सरकार, आदेश या रिट, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, यथास्थिति वारंट और प्रमाण पत्र की प्रकृति में रिट शामिल हैं। यह स्पष्ट है कि यदि रिट याचिकाओं के मामले में भी वाद की प्रक्रिया का पालन करना पड़े, तो त्वरित और महंगे उपचार का पूरा उद्देश्य विफल हो जाएगा। अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका, इस पर जोर देने की आवश्यकता है, अनिवार्य रूप से एक मुकदमे से अलग है और अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका की कार्यवाही में मुकदमे की प्रक्रिया को देर से शामिल करना और शामिल करना गलत होगा। "

(13) इसी तरह का विचार R.S. द्वारा व्यक्त किया गया था। सरकारिया, न्यायमूर्ति (अब उच्चतम न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश) भगवान सिंह और अन्य बनाम समेकन के अतिरिक्त निदेशक, पंजाब, फिरोजपुर और अन्य । आयोजित किया गया था -

पीठ ने कहा, "धारा 141 में जो प्रावधान किया गया है, वह यह है कि सिविल क्षेत्राधिकार के किसी भी न्यायालय में सभी कार्यवाहियों में मुकदमों के संबंध में संहिता में निर्धारित प्रक्रिया का यथासंभव पालन किया जाना चाहिए। एक उच्च न्यायालय, जब वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, तो मेरी राय में, नागरिक न्यायपालिका का न्यायालय नहीं कहा जा सकता है। उच्च न्यायालय के इस विशेष अधिकार क्षेत्र का उद्देश्य एक ऐसे व्यक्ति के लिए एक बहुत ही त्वरित और

प्रभावी उपचार प्राप्त करना है, जिसके कानूनी या संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन किया गया है। यदि संहिता में निर्धारित सिविल प्रक्रिया के सभी विस्तृत और तकनीकी नियमों को संहिता की धारा 141 के माध्यम से इन रिट कार्यवाहियों में शामिल किया जाता है, तो उनके प्रक्रियात्मक विलंब में फंसने से उनका उद्देश्य विफल होने की संभावना है। संक्षेप में, सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान, संदर्भ में, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट कार्यवाही को नियंत्रित नहीं करते हैं। "

(14) के. एल. भंसाली बनाम आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक, 1967 पी.एल.आर. 19, में आर. एस. नरूला न्यायमूर्ति (तत्कालीन विद्वान मुख्य न्यायाधीश के रूप में) ने कहा -

"इसके अलावा, मैं यह सोचने के लिए इच्छुक हूं कि अगर मृतक याचिकाकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों में से एक ने भी रिकॉर्ड में लाए जाने का दावा किया होता तो उसे रिट याचिका को लिखने की अनुमति दी जा सकती थी। उपशमन का कानून संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाओं पर लागू नहीं होता है। यह देखना होगा कि क्या वह अधिकार जो मृतक को उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता का आह्वान करने का हकदार है, याचिका पर मुकदमा चलाने का दावा करने वाले कानूनी प्रतिनिधि के पास है या नहीं। "

यहां तक कि दुला सिंह बनाम भारत संघ और अन्य में, (उपर्युक्त) तुली, न्यायमूर्ति ने पीठ की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित शब्दों में इस विचार का समर्थन कियाः -

याचिकाकर्ता के वकील ने आग्रह किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के प्रावधान रिट कार्यवाही पर लागू नहीं होते हैं और अपने उप-मिशन के समर्थन में वह शमशेर बहादुर, जे. श्री कृपाल सिंह बनाम डिप्टी कस्टोडियन जनरल के फैसले पर भरोसा करता है। श्री अजीत सिंह बनाम उप अभिरक्षक, में एक खंड पीठ द्वारा अपील में विद्वान न्यायाधीश के फैसले की पुष्टि की गई थी। चौधरी जय राम दास बनाम गुरकरण सिंह के मामले में इस न्यायालय की एक अन्य खंड पीठ ने भी यही विचार रखा था। इस मामले की जांच मैंने पाली राम बनाम होल्डिंग्स, हिसार के अतिरिक्त निदेशक परिसंघ में की थी, जिसमें मैंने कहा था कि -

"रिट याचिका इस आधार पर प्रतिवादी की मृत्यु के कारण समाप्त नहीं होती है कि उसके कानूनी प्रतिनिधियों को सीमा अधिनियम में निर्धारित समय के भीतर रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था। मृत याचिकाकर्ता या मृत प्रतिवादी के कानूनी प्रतिनिधियों को आदेश 1, नियम 10, सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत रिकॉर्ड पर लाया जा सकता है।

उस निष्कर्ष पर पहुँचते समय मैंने कृपाल सिंह के मामले (उपर्युक्त) में न्यायमूर्ति शमशेर बहादुर के फैसले और के. एल. भंसाली बनाम आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक, उपर्युक्त मामले में न्यायमूर्ति नरूला के फैसले पर भरोसा किया था, जिसमें विद्वान न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाओं पर उपशमन का "कानून" लागू नहीं होता है। "

(15) प्रत्यर्थियों के विद्वत वकील ने तब चंद्रदेव पांडे और अन्य बनाम सुखदेव राय और अन्य ए.आई. आर 1972 इलाहाबाद 504 पर भरोसा किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पुनरीक्षण याचिका में मृतक पक्षकार के उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन के लिए आवेदन परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित है। यह प्राधिकरण प्रत्यर्थियों के मामले को आगे नहीं बढ़ाता है क्योंकि तत्काल मामले में हम संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में एक मृत पक्ष के उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन के लिए एक आवेदन से संबंधित हैं। इसके अलावा, जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, यह लगातार

माना गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 22 पुनरीक्षण याचिकाओं पर लागू नहीं होता है। इस मामले के प्रयोजनों के लिए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की तुलना में इस बिंदु पर इस न्यायालय के पहले के निर्णयों की शुद्धता की जांच करना आवश्यक नहीं है।

(16) उच्चतम न्यायालय की बाध्यकारी मिसाल और इस न्यायालय में राय की प्रधानता को देखते हुए, हम मानते हैं कि आदेश 22, सिविल प्रक्रिया संहिता, रिट कार्यवाही पर लागू नहीं होती है।

(17) तथापि, दुला सिंह के मामले (उपर्युक्त) में विद्वत न्यायाधीशों ने उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् इस आशय के कुछ आक्षेप किए कि रिट याचिका में मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने का आवेदन परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होता है। प्रत्यर्थियों के विद्वान वकील ने इन अवलोकनों पर दृढ़ता से भरोसा किया और 1908 के सीमा अधिनियम संख्या 9 के अनुच्छेद 181 के अनुरूप सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 का उल्लेख किया, जो निम्नानुसार हैः -

आवेदन का विवरण	सीमा की अवधि	जिस अवधि से समय चलना शुरू होता है
137. कोई अन्य आवेदन जिसके लिए इस प्रभाग में कहीं और कोई सीमा अवधि प्रदान नहीं की गई है	तीन साल	जब आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होता है

(18) उन्होंने तर्क दिया कि अनुच्छेद में प्रयुक्त भाषा इंगित करती है कि किसी भी आवेदन के लिए तीन साल की सीमा का प्रावधान किया गया है जिसे अदालत में प्रस्तुत किया जाता है। हम शा मूलचंद एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जवाहर मिल्स लिमिटेड, सलेम, ए.आई. आर 1953 एस.सी. 98 में उच्चतम न्यायालय के लॉर्डशिप द्वारा की गई अनुवर्ती टिप्पणियों को देखते हुए विद्वान वकील द्वारा उठाए गए इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

"विद्वान अधिवक्ता, हालांकि, दृढ़ता से अनुच्छेद 181, सीमा अधिनियम पर निर्भर करता है। वह अनुच्छेद लास, उच्च न्यायालयों के अधिकांश, यदि सभी नहीं, निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला में, केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदनों को नियंत्रित करने के लिए अभिनिर्धारित किया गया था। यह हो सकता है कि एक ही उच्च न्यायालय के भीतर भी राय में भिन्नता हो सकती है, लेकिन विचारणीय दृष्टिकोण निस्संदेह यह है कि अनुच्छेद केवल संहिता के तहत आवेदनों पर लागू होता है। "

(19) जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायशास्त्र का प्रयोग करते हुए सामान्य रूप से समझे जाने वाले वाद का विचारण नहीं करता है। यह स्थापित कानून है कि जब कोई न्यायालय संसद के किसी अधिनियम के तहत किसी विशेष अधिकार क्षेत्र में निहित होता है, तो उसे उस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए आवश्यक सभी सहायक कदम उठाने का अधिकार भी दिया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय में प्रस्तुत याचिका को अनिवार्य रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह एक पूरी तरह से अलग मामला है कि इस तरह के एक आवेदन पर विचार करने और निर्णय लेने के दौरान, यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के सिद्धांतों पर ध्यान दे सकता है जो समानता, न्याय और सद्भावना पर आधारित हैं, लेकिन ऐसा करने में यह न्यायालय शायद ही कभी उक्त संहिता के

दंडात्मक प्रावधानों का सहारा लेता है। यह देखना होगा कि क्या इस तरह के आवेदन के अनुदान से न्याय के उद्देश्यों को बढ़ावा मिलेगा या नहीं। इसलिए हमारा विचार है कि सीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 137 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय में दायर आवेदन को नियंत्रित करने के लिए नहीं माना जा सकता है।

(20) चीजों को देखने का एक और तरीका है। यदि किसी रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया जाता है कि किसी आवश्यक पक्ष की कानूनी प्रस्तुतियों को रिकॉर्ड पर नहीं लाया जा सकता है, तो याचिका को खारिज करने को गुण-दोष के आधार पर खारिज नहीं माना जाएगा और पारित आदेश अदालत के फैसले पर रोक के रूप में काम नहीं कर सकता है। याचिकाकर्ता उसी विषय पर एक और याचिका दायर कर सकता है और यह कहकर देरी की व्याख्या कर सकता है कि वह पहले की रिट याचिका को धीरे-धीरे लड़ रहा था। यदि उच्च न्यायालय तब संतुष्ट होता है कि ऐसे याचिकाकर्ता के साथ किए गए प्रकट अन्याय को तब तक टाला नहीं जा सकता जब तक कि नई दायर की गई रिट याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार नहीं किया जाता है, तो वह ऐसी याचिका पर विचार करने के लिए खुला होगा। इस तरह का पाठ्यक्रम न्याय के उद्देश्य को बढ़ावा देने के बजाय केवल प्रक्रियात्मक देरी को बढ़ाएगा। ऐसी व्याख्या जो इस तरह के परिणाम की ओर ले जाती है, उससे हर कीमत पर बचना चाहिए। हमारी सुविचारित राय में दुला सिंह का मामला (उपर्युक्त), जिसमें यह कहा गया है कि 1963 के परिसीमा अधिनियम संख्या 36 की अनुसूची का अनुच्छेद 137 संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी याचिका में पक्षकारों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने के आवेदन पर लागू होता है, सही ढंग से निर्णय नहीं किया गया है।

(21) उपर्युक्त कारणों से हमारा यह मत है कि अनुसूची का अनुच्छेद 137 परिसीमा अधिनियम सं. 1963 का 36 संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी याचिका में किसी पक्षकार को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने के आवेदन पर लागू नहीं होता है।

(22) इसके परिणामस्वरूप यह अपील अनुज्ञात की जाती है, इस न्यायालय के विद्वत न्यायाधीशों द्वारा पारित दिनांक 23 नवंबर, 1973 और 28 मार्च, 1974 के आदेशों को अपास्त कर दिया जाता है और मामले को विधि के अनुसार नए निर्णय के लिए विद्वत एकल न्यायाधीश को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

15 दिसंबर, 1976

चिन्नाप्पा रेड्डी, न्यायमूर्ति - मैं सहमत हूँ।

सुरिंदर सिंह, न्यायमूर्ति - मैं सहमत हूँ।

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

रजत कुमार कनौजिया

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी,

फ़रीदाबाद,हरियाणा